eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

समकालीन कृषि संकट और हिन्दी कविता

डॉ0 सुमति सिंह[1]
[1]प्रतापगढ, उ0प्र0

Received: 01 April 2025 Accepted & Reviewed: 05 April 2025, Published: 30 April 2025

Abstract

समकालीन भारतीय समाज में कृषि संकट एक जटिल और बहुआयामी समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसमें आर्थिक अस्थिरता, ऋणग्रस्तता, जलवायु परिवर्तन, बाजार की असमानताएँ तथा नीतिगत विफलताएँ प्रमुख कारक हैं। यह संकट केवल कृषि उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि किसानों के सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित करता है। हिन्दी कविता ने इस संकट को संवेदनात्मक और वैचारिक स्तर पर अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समकालीन कवियों ने किसानों की पीड़ा, आत्महत्या की प्रवृत्ति, विस्थापन, भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव और ग्रामीण जीवन के विघटन को अपनी रचनाओं में सशक्त रूप से चित्रित किया है। हिन्दी कविता में कृषि संकट का चित्रण यथार्थवादी, प्रतिरोधात्मक और करुणात्मक स्वर में मिलता है, जो न केवल वर्तमान सामाजिक संरचना की विसंगतियों को उजागर करता है, बल्कि परिवर्तन की चेतना भी उत्पन्न करता है। यह कविता एक ओर शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाती है, तो दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं और संघर्षशीलता को भी रेखांकित करती है। इस प्रकार, समकालीन हिन्दी कविता कृषि संकट के बहुआयामी पहलुओं को समझने का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरती है।

कुंजी शब्द– कृषि संकट, हिन्दी कविता, किसान जीवन, भूमंडलीकरण, ऋणग्रस्तता, जलवायु परिवर्तन, सामाजिक यथार्थ, ग्रामीण जीवन

Introduction

भारत के किसान लम्बे समय से एक भयावह और जानलेवा, कृषि संकट की गिरफ्त में है। बड़े किसान और धनी किसान भले ही इस संकट से ज्यादा प्रभावित न हुए हों। लेकिन देश के कुल किसानों का 90 प्रतिशत छोटे और मध्यम किसान इस संकट के कारण लाखों की संख्या में आत्महत्य करने को विवश हुए है। सरकारों के कई नीम–हकीमी उपायों के बावजूद भी यह संकट निरन्त बढ़ता गया है। छोटी जोत की आय से किसान परिवार का गुजारा चलना मुरिकल हो गया है। ये किसान, परिवार कर्ज समेत अनेकों समस्याओं के भारी बोस तले दबे है। तत्कालिक, और स्थानीय मांगों को लेकर किसान के आंदोलन और सरकारों द्वारा उनका लाठी–गोली से दमन रोजमे की बात बन चुकी है। मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों ने किसानों और उनकी समस्याओं से पल्ला झाड़ लिया। संसदीय राजनीति में खेती–किसानी पर गम्भीर चर्चा करना इतिहास की बात हो गयी है। इस निराशा भरे माहौल में भी देश दुनिया के कुछ खेती के जनपक्षधर बुद्धिजीवियों ने आज के खेती के संकट को समझने का प्रयास किया है, और लगातार कर रहे हैं। खेती का संकट देवी सीता की तरह किसी घड़े से अचानक प्रकट नहीं हुआ है ।इसकी जड़े खेती के विकास के लिए शासक वर्गों की नीतियों और यूरोप की औद्योगिक क्रांति द्वारा खेती पर थोपे गए उद्योग के वर्चस्व में है। यह खेतिहर पैदावार के लिए अपनाई गयी उस पूँजीवादी प्रणाली के विकास, का वाजिब

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

नतीजा है। जिसका मकसद आदमी की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करना नहीं, बल्कि मुनाफा लूटना है, अपने आरम्भिक दौर में, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने ईश्वर और उसके पुत्रों राजे–रजवाड़ों की सत्ता को ढहाकर अपनी शानदार, महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहून किया था, और सत्ता के केंद्र में ईश्वर के बजाय मानव को स्थापित किया था। लेकिन पुरानी दुनिया के खण्डहरों पर जो नयी दुनिया बनायी गयी, वह बाजार और मुनाफे पर टिकी थी। पूंजी को लगातार बढ़ाते जाना, वरना अपनी मौत को दावत देना पूँजीवादी उत्पादन प्रलाणी का अन्तिम उद्देश्य होता है। लेकिन खेती में पूँसी की घुसपैठ धीरे–धीरे और लम्बी प्रक्रिया में होतीहै। जो उद्योगों में उत्पादन उस तौर तरीके से भिन्न रूप में होती हैं।जिसे अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के कपड़ा बुनने के उदाहरण से समझा जाता है।

इस अन्तर का कारण खेती के मूल चरित्र में है। खेती से पैदावार करने में जमीन ही सबसे बुनियादी साधन है। उद्योग में तकनीक का विकास करके मशीनरी आदि साधनों की लागत को लगातार घटाया जा सकता है। लेकिन जमीन के मामले में ऐसा नहीं किया जा सकता। साथ ही उद्योग की लागतो की तरह इसके बड़े पैमाने पर नकदी में खरीद दृ बिक्री आसान नहीं है ।उद्योग में बहुत से मज़दूर एक छोटी जगह में मालिकों या मैनेजरों की नजरों के सामने कार्य करते है जबकि दूर तक फैले बड़े बड़े फार्म में सब मजदूरों में एक साथ निगाह नहीं रखी जा सकती है। मौसम में होने वाले उतार चढ़ाव पर उद्योग प कुछ विशेष फर्कनही पड़ता लेकिन खेती में पाला गई अतिवृष्टि और आंधी तूफान ने ही संपूर्ण फसल को चौपट कर सकती है। खेती में कीट दृपतंगे बीमारियां तैयार फसल को भी नष्ट कर देती है परन्तु उद्योग में ऐसा कोई डर नहीं है। खेती में कभी तो मजदूरों के लिए कार्य नहीं होता, और कभी अचानक बहुत ज्यादा मजदूरों की आवश्यकता हो जाता है। खेती में हर फसल के पकने का समय निश्चित है उसे घटाया नहीं जा सकता। इन्हीं कारणों के चलते खेती मे पूजी के घुसपैठ धीरे धीरे और उद्योग से अलग तरीकों से होती हैं।

राजे–रजवाड़ों के पुराने सामंती जमाने में किसान अपने परिवार और खेती की जरूरतों की पूर्ति या खुद ही कर लेता या फिर बढ़ई लोहार, जुलाहे आदि पेशों में लगे लोगों का श्रम फैसलाने के हिसाब से खरीदकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। बीज–खाद बीज–खाद, हल, बैल, खेती की साधारण औजार जैसी खेती की तमाम लागते और आड़े वक्त के लिए श्रम या तो उसका अपना होता फिर वह फसलाने और डंगवारे जैसे तरीकों से गाँव से ही जुटा लेता था। इसी तरीके से रोटी कपड़ा और मकान, जैसी बुनियादी इन्सानी जरूरतें भी पूरी हो जाती थीं। गांव के कारीगर को पता होता था कि वह अमूकचीज किसके लिए बना रहा है और क्यों बना रहा है। इसी तरह किसान, को भी पता होता था कि उसने फसल का कौन दृ सा हिस्सा किसके लिए उगाया है।खेती को लागतें और पैदावार दोनों उसकी उपजी थी। खेती किसान की आमदनी नहीं है अपितु उसकी जरूरतों को पूरा करने का साधन थी। किसान की चौतरफा लूट होती है सबसे पहले उसे खेती की लागतों को लूटा जाता है। दूसरे उपभोक्ता मालों के दाम लगातार बढ़ते जाने से बड़ी महंगाई के जरिए किसान को लूटा जाता जाता है। तीसरे, उपज, सस्ते से सस्ते दामों पर हड़पी जाती है। चौथे जब किसान की आय उसकी जीवन की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाती तो मजबूरन उसे बैंकों या सहकारों से मोटे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है।उसकी पहले से ही नाकाफि आय में एक और चोर और घुस जाता है यही चक्र साल–दर साल चलता रहता है और किसान के लिए

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

आत्महत्या के अलावा सभी दरवाजे एक–एक करके बन्द हो जाते हैं। मानव सभ्यता के निकास में कृषि की अमूल्य भूमिका रही है। मानव–सभ्यता का अस्तित्व ही कृषि पर टिका रहा। रेमंड विलियम के अनुसार तो कृषि से ही संस्कृति का जन्म होता है कृषि ने ही हमें संस्कारित बनाया। प्रारम्भिक खेती पशुपालन व शिकार की प्रक्रिया प्रकृति द्वारा नियंत्रित होती रही, जिसमें संघर्ष था. मानवीयता थी, त्याग की भावना थी, प्रकृति विरुद्ध उसमें कुछ भी नहीं था, जैसे–जैसे मानव के अन्दर संग्रह की प्रवृत्ति ने जगह बनायी मानव अधिक लालची, द्वेषी और दंभी बनने लगा। सुखभोग की अपारलाल सायें अपने स्वाभाविक विकास की सीमा को पार कर कुलांचे मारने लगीं। विज्ञान और सभ्यता की विकास ने मनुष्य के अन्दर श्रम के प्रति घृणा का भाव भर दिया। तमाम बुराइयों से भरे सभ्य और सुसंस्कृत दिखने वाले लोग अपनी ही साथी सहयोगी किसान, मजदूर व अन्य का हेय दृष्टि से देखने लगे। लोगो ने ऐसी सामाजिक संरचना बनायी। जिसमें अधिक मेहनत करते वाले वर्ग का अपने ही उत्पादों पर कोई अधिकार नहीं इस प्रकार उत्पाद वर्ग की आर्थिक स्थिति दिन–प्रतिदिन गिरती गयी और संचलक वर्ग की आर्थिक स्थिति दिन दूनी रात चौगनी होती गयी।इस प्रकार प्रकार से बढ़ी अमीरी गरीबी की खाई का देश हमारा समाज आज भी झेल रहा है, जो घटने का नाम ही नहीं ले रहा है। उत्पादक वर्ग शोषण, अत्याचार व गुलामी का शिकार हुआ तथा संचालक वर्ग, के सुख का साधन बना। मगर, समय और परिस्थितियां हमेशा एक जैसी नहीं होती । समय समय पर वह करवटें बदला करती हैं कोई भी समाज हो, उसमें अच्छे बुरे लोग व अच्छे बुरे कार्य हमेशा होते रहते हैं। जरूरत है । अच्छाइयों को बढ़ावा देने की और बुराई की निंदा करने की जिसे हम संचालक वर्ग कहते जो, हमारे लिए अन्धकार का प्रतीक बन चुका है, समय– समय पर उसी में से रोशनी की किरण भी फूटती है। कवि वशिष्ठ अनूप ने ठीक ही कहा है कि "कड़ी चट्टान के सीने ही निर्झर निकलता घनी रातों के पीछे मोर का मंजर निकलता है।" इस प्रकार समकालीन परिदृश्य को समझने लिए हमे फ्लैशबैक का सहारा लेना पड़ता जब तक हम सहजानन्द सरस्वती व प्रेमचंद् के समय के किसान आन्दोलन को नहीं समझेंगे तब तक हम समकालीन कृषि संकट एवं किसान जीवन की चुनौतियों से लड़ने की ताकत नहीं ग्रहण कर सकते। किसान हमेशा से अभावग्रस्त रहा है, समस्याओं से जूझता रहा है, लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी मेहनत और कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहा है। बच्चे जैसा भोला हृदय रखने वाले किसान को आज भी राजनेता, सहकर पटवारी व प्रशासनिक अधिकारी खिलौना देकर बझाते आए हैं। कभी भी हृदय, से किसानों की समस्याओं को समाप्त करने का संक– ल्प कोई नहीं लेता है।

"1960से 1970 के दशक में 'हरित क्रान्ति' आई पंचवर्षीय योजनाओं के तहत नई कृषि नीति कों बढ़ावा मिला। कृषि के उत्पादों में वृद्धि हुई। इसका लाभ कमोवेश हर श्रेणी को प्राप्त हुआ। वर्ष 1969 से इन्दिरा गाँधी द्वारा बड़े बैंको बीमा– कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण से गाँवों में ऋण आसान शर्तों पर उपलब्ध होने लगा। नाबार्ड, ने वाणिज्यिक बैंकों की सहायता से ग्रामीण बैंकों की देशव्यापी श्रृंखला स्थापित की । मृतप्राय दस्तकारियों को जीवित किया गयाअनाज उर्वरक बिजली आदि पर सरकारी सब्सिडी तथा जवाहर रोजगार योजना से काम के अवसर पैदा हुए इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत दलितों तथा अन्य कमजोर श्रेणियों को सस्ते मकान उपलब्ध कराये गये।" यह समय किसानों के लिए शुभ संकेत रक्षा शुभ किसान खुशहाली की ओर बढ़े, शहरों की ओर कृषकों का पलायन रुका। किसान मजदूर न बनकर अपने मर्यादा की और लौटा। कृषकों की इच्छाएँ सीमित होती हैं। वे प्रकृति के साथ ताल मेल बैठाकर चलता है। वह

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

प्रकृति की मार को झेलने के लिए तैयार भी रहता है। मगर कब तक ? जब वह अपने स्वाभाविक विकास की गति से अपनी क्षमता के अनुसार चलता है। मुनाफा की होड़ में इतना दम लगाकर नहीं दौड़ता कि मर जाये। यह गुण पूजीपतियों का है, जो बड़े किसानों के साथ–साथ छोटे किसानों के अंदर इस जीन को बायो टेकनोलॉजी के माध्यम से भर रहे है ।यही वह कारण है जो उनके जीवन में चुनौती बन कर सामने आ रहा है।

विदर्भ के किसान इसी मुनाफा संस्कृति के शिकार होकर आत्म–हत्या कर रहे हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी को 1908 में ही इस समस्या का भान हो गया। तभी तो वह लिखते है कि दृ"जहां तक जमीन की उर्वरा या उत्पादक शक्ति की सीमा का अतिक्रमण नहीं होता वहीं तक अधिक खर्च करने से लाभ हो सकता है। आगे नहीं उत्पादकता की सीमा पर पहुंच जाने पर खर्च बढ़ाने से लाभ के बदले उल्टा हानि होती है । अंततरू फल यह होगा, कि पैदावार बढ़ाने की कोशिश में अधिक पूजी लगाने और अधिक परिश्रम करने पर भी आदमी का हिस्सा कम पड़ेगा । धीरे–धीरे यह हिस्सा और कम होता जायेगा। यहाँ तक कि दोकृ चार वर्ष पैदावार की अपेक्षा खर्च बढ़ जायेगा और उन पन्द्रह आदमियों का गुजारा मुश्किल से होगा। उन्हें जमीन छोड़कर भागना पड़ेगा।" यही तो हो रहा है आज देश के किसानों के साथ कम्पनियों के बहकाने में आकर किसान महँगे खाद, महंगे बीज, महंगे कीटनाशक का प्रयोग अंधाधुंध कर रहे हैं, जिससे खेती का खर्च तो बढ़ा है, लेकिन, उत्पादन इतनी मात्रा मे न मिलने पर किसान कर्ज में हो जाने के कारण आत्महत्या कर रहा है। वास्तव में किसान अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए नहीं मरता वह तो इन भस्मासुरों का उधार भरते–भरते अपने आपको मिटा लेता है, और भर भी नहीं पाता है। वर्तमान कृषि व्यवस्था आत्महत्या की प्रतीक बन चुकी है। स्मम–ज्ञलनदहींप आत्महत्या हजारों किसानों के आत्म हत्या का प्रतीक है। वर्तमान समय में देश ऐसी स्थिति से गुजर रहा है जो हमें बार– बार 1757 से 1857 के पूरे परि दृश्य की तरफ मुड़ने और वहाँ से भविष्य को देखने सोचने समझने तथा निर्णय लेने को मजबूर कर रही है। ऐसा लग रहा है कि भारत का इतिहास अपने आपको दोहराने की प्रक्रिया में है। निराला की ये पंक्तियाँ तब भी प्रासांगिक थी और आज भी उतनी ही प्रासांगिक है–

"हे अमा निशा उगलता गगन घन अंधकार।

हो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार।

आ प्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल।

भूधर जो ध्यान मग्न केवल जलती मशाल।"

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है, कि भारत सरकार की योजनाएं भारत के गाँवो तक पहुँचते पहुंचते मृतप्राय हो जाती हैं। जबकि ये अमेरिका से संचालित होने वाली योजनायें भारत के गाँवों में न चाहते हुए भी घर घर में घुस जा रही है।बड़े शहरों की तो बात ही छोड़िए।

ए० ओ० ए के तहत कृषि पर समझौते के तीन प्रमुख अंग हैं– पहला व्यापार उदारीकरण दूसरा– आयात उदारीकरण। तीसरा दृघरेलू सब्सिडी में कटौती। इन तीनों समझौतों के कारण किसानों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। चारों ओर चोरी, हत्या, छिनैती, भुखमरी व बेरोजगारी का तांडव मचने लगा

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

है। यही वह दौर है जहाँ से आरम्भ होता है किसान आत्महत्या का लगातार बढ़ते जाने वाला सिलसिला। अब किसान आन्दोलन करने की स्थिति में नहीं हैं तो आत्महत्या से ही वह प्रति– रोध जता रहा है ।

फिल्म 'ए थाउजेंड डेज ए एंड ए ड्रीम प्लचिमाड़ा। यह दिखाया गया है, कि कम्पनी ने कैसे गाद जैसी मोटी चीज को उपयोगी खाद बताकर किसानो के खेती में, डलवा दिया जिससे पूरी भूमि अनुर्वर हो गयी और लोगों को कम्पनी को जमीन देने के लिए मजबूर होना पड़ा। किसानों के साथ कम्पनियों का यह नये किस्म का धोखा सामने आया जिसे किसानों को समझने की जरूरत है निम्नलिखित पंक्तियाँ, इस पूरे परिदृश्य को अभिव्यक्त करती है दृ

"हम खेत न हरगिज छोडेंगे, यह खेत है पुरखों की थाती ।
इसमें है, हमारी परिपाटी, इससे ही सुबह हमारी है।
इससे है, हमारी सझवाती, सिंगुर की हो या नोयडा की।
सबकी बस एक कहानी है, हर जगह वही हिटलरी ऐंठ।
हर जगह वही मनमानी है, हमने ही तुम्हे बनाया है
और तुम हमसे ही खेलोगे, हम अगर नहीं देना चाहे
दो जबरन कैसे ले लोगे, तुम साथी दौलत वालों के।
यह भेद तुम्हारा खोलेंगे, सत्ता के रंगे सियारों की।
यह चाल न चलने पायेगी, जो दाल गलाई थीअबतक।
इस बार न गलने पायेगी, हमने भी यह है ठान लिया।
अब खूनी, जबड़े टोड़ेंगे, हम खेत न हरगिज छोडेंगे।"

किसानों को आत्महत्या की दशा तक पहुँचाने के मुख्य शरणों में खेती का आर्थिक दृष्टि से नुकसान दायक होना, भारतीय कृषि का मानसून पर निर्भर होना मानसून की असफलता, सूखा, ऋण का बोझ तथा सरकार की किसान विरोधी नीतियाँ आदि जिम्मेदार कारक हैं। उदारीकरण की नीतियों के बाद नकदी खेती को बढ़ावा मिला। सामाजिक–आर्थिक बाधाओं के कारण पिछड़ी जाति के किसानों के पास नकदी फसल उगाने लायक तकनीकी जानकारी अक्सर अभाव रहा है। यही कारण है कि आज किसान नकदी फसलों की लालच मे परम्परागत फसलों को छोड़कर कर्ज में डूब गया।

आचार्य बालकृष्णन का यह सुझाव अच्छा लगा कि, "हमारी सोच है, किसानों अपने उत्पादों का वाजिब मूल्य मिले। किसान की आमदनी, दोगुनी करने के मुद्दे पर उन्होंने कहा है कि अगर किसानों की आमदनी दुगुना करना चाहते है तो फूड प्राससिंग इंड्रस्टीज को बढ़ाना देना होगा। कलस्टर कल्टीवेशन की पुरुता व्यवस्था होनी चाहिए, फसलों की बुआई के सटीक आकड़े होने चाहिए। यही नहीं किसानों को वाजिब कीमत दिलाने के लिए सरकार के पास एक व्यवस्था होनी चाहिए। जिस मशीन के साथ बाबा रामदेव 'पतंजलि

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

उत्पाद विक्रय केन्द्र' भारत के प्रत्येक शहर की नहीं बल्कि गाँवो तक पहुँचाया है अगर उसी मिशन के साथ वह भारतीय कृषि उत्पाद क्रय केंद्र भारत के शहरो और गांवों तक पहुँचा देते तो किसानों को अपने उत्पादों की विक्री के लिए सरकार न साहूकार का मुँह नहीं ताकना पड़ता। हमारी सरकार दावा करती है कि किसानों की आय दोगुनी हो जायेगी। इस सरकार की हवाई घोषणायें तो आम जनता व किसान बुद्धिजीवियों को खुश कर दे रही हैं परन्तु व्यावहारिक धरातल पर किसान की जो दुर्दशा हो रही है, वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के हृदय को विदीर्ण कर देगी।सही कहा है किसी ने दृ"बहारों का दरबार जोर से बोल यहाँ, कम सुनते मक्कार जोर से बोल यहाँ ।सत्ता के कानों में रहता तेल पड़ा ।मिमियामत हुंकार जोर से बोल यहाँ ।" गांवों के विकास, सुरक्षा व देखभाल के लिए बनायी गयी संस्थायें ग्राम पंचायत, ब्लाक, थाना, तहसील तथा जिला स्तर की कुछ संस्थाओं का चरित्र तो किसान रक्षक नहीं बल्कि किसान भक्षक बन गया है। इनके संरक्षण में तो न किसान सुरक्षित है न ही किसानी इन अधिकारियों से बेहतर काम तो आज इन क्षेत्रों में गुंडे दलाल व नेता कर रहे हैं। जो आम जनता के शोषक भी है. और रक्षक भी। अपनी सुरक्षा सम्मान और सुविधा के लिए थोड़ा बहुत शोषण करा लेना आज के गांवों का दर्शन बन गया है यह सब हमारी व्यवस्था की नाकामी का ही परिणाम है। आज किसानों के यहाँ सबसे अधिक असु– रक्षित उनके बच्चे और वृद्ध माता–पिता दिख रहे जिनके लिए हमारी सरकार के पास कोई व्यवस्था नहीं है। स्वामीनाथन आयोग को लागू कर किसानों की आय दोगुना करने की टिंढोरा पीटने वाली सरकार अभी तक किसानों के जीवन में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं ला सकी। आज स्थिति यह है, कि प्रत्येक राज्य में किसान सरकार का विरोध जताने के नये नये तरीके अपना रहे हैं। कहीं किसान आत्म हत्या के माध्यम से तो कहीं नरमुंडों की माला पहनकर, कहीं सड़को पर, सब्जियाँ, अनाज व दूध फेंककर किसान विरोध जता रहे हैं। पर सरकार के कानों पर जूँ नहीं रेंग रहा है ।वह इन्हें उपद्रवी तत्व घोषित कर उलटे उन्हें ही दोषी ठहराने की कोशिश में लगे हुई है। सही समाधान हो डै.. स्वामीनाथन की आयोग की सिफारशों को लागू करने व उसका सही क्रियान्यवन करने से है जिसकी तरह किसी का ध्यान ही नहीं जाता है। ऐसा नाटकीय भारत के राजनेता ही कर सकते हैं। इस आन्दोलन में एक बात और देखने को मिली कि इसमें व्यापकता तो थी परन्तु नेतृत्व गायब था। सस्वामी सहजानन्द के समय में किसान आंदोलन को जो नेतृत्व मिला वह नेतृत्व और संगठन आज के किसान आन्दोलन से गायब है।

अतः यह कहा जा सकता है, कि किसानों की बदहाली को ठीक करने के लिए सरकार को फिजूल–खर्ची और भ्रष्टाचार रोकना होगा। इस तरह से बचायी गयी धनराशि किसानों के कल्याण पर खर्च की जा सकती है। देश की बदहाली बुलट ट्रेन व एक्सप्रेस वे दूर नहीं होगी। देश की बदहाली, कृषि क्षेत्र का ही विकास दूर करेगा।जिसके ऊपर देश की पचास प्रतिशत आबादी निर्भर करती है ।महाराष्ट्र सरकार के पास कि सानों का कर्ज माफ करने के लिए पैसे नहीं हैं, वहीं राज्य में 36 करोड़ रुपये खर्च करके शिवाजी मेमोरियल बनाया जा रहा है। समय रहते किसानों ने यदि अपनी उत्पादन प्रणाली नहीं बदली तो स्थिति शायद ही बदले व इसलिए किसानों को समय के साथ फलों की खेती, सब्जी की खेती तथा दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देना होगा। किसानों की हालत सुधारने के लिए किसानों के लिए सरकार को विशेष प्रयास करना होगा। अगर किसान बर्बाद हुए, तो देश के चमकते महानगर भी बर्बाद हो जायेंगे। किसानी एक प्राचीनतम पेशा है। कविता अपने कलेवर में अपने इस पुराने साथी को सुखों दृदुखों को अभिव्यक्त करती

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

रही है। वह अपनी यात्रा में किसानों की संवेदनाओं, उनके तत्कालिक परिस्थितियों का वहन करती हुई, उनके सुखद भविष्य की कामना सदैव करती रही है। यहाँ आप अपने समय एवं समाज को अभिव्यक्त करती चंद प्रतिनिधि कविताएं संकलित हैं दृ

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी जीविकी–विहीन,
लोग सीद्यमान सोच बस कहैं एक ए न तो कहा जाई, का करी,
तुलसीदास दृकवितावली

धरनि धेनूचारिइ चरन प्रजा सुबच्छ पहनाई।
हाथ कछु नहि लागिहैं किए गौड़ गाइ।
तुलसीदासदृ दोहावली

किसान– मैथिलीशरण गुप्त हेमन्त में बहुदा घनों से पूर्ण रहता व्योम है,
पारस निशाओं में तथा हंसता शरद का सोम है।

हो जाये अच्छी भी फसल, पर लाभ कृषकों को कहाँ,
खाते, खवाई, बीज, ऋण से रंगे हैं रकवे जहाँ।
आता महाजन के यहाँ वह अन्न, सारा अंत में,
अधपेट खाकर फिर उन्हें है कांपना हेमंत में।
बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा,
है चल रहा सन सन पवन, तन से पसीना बह रहा।
देखो कृषक शोषित, सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आंच में, वे निज शरीर जला रहे।
घनघोर वर्षा हो रही, है गगन गर्जन, कर रहा,
घर से निकलने को गरजकर, वज्र वर्णन कर रहा।
तो भी कृषक, मैदान, में करते निरन्तर काव्य हैं,
किस लोभ से वे आज भी लेते नहीं विश्राम है।

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025

eISSN 3049-2610
RESEARCH STREAM
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 02, Issue 01, April 2025

बाहर निकलना मौत है, आधी अंधेरी रात है,
है शीत कैसा पड़ रहा, औ थरथराता गाल है।
तो भी कृषक ईंधन जलाकर, खेत पर हैं जागते,
यह लाभ कैसा है, न जिसका मोह अब भी त्यागते।
सम्प्रति कहा क्या हो रहा है, कुछ न उनको ज्ञान है,
हे वायु कैसी चल रही, इसका न कुछ भी ध्यान है।
मानो भुवन से भिन्न इनका दूसरा इनका लोक है,
शशि सूर्य है फिर भी कहीं, उनमें नहीं आलोक।

इस प्रकार कर्ज से दबकर किसान आत्महत्या करता है, वह सामान्य सी खबर भी नहीं बनती है। हम समकालीन हिन्दी कविता के मिजाज को समझे कि शाइनिंग इंडिया के नीचे दबी भारतीय किसान की सच्चाई को कितना समझ पायी है। हिन्दी कविता सरोकार रहने वाले कवि पाठक और आलोचक मौजूदा विकास के मॉडल किस दृष्टि से देखते हैं। बहुधा संसार में राष्ट्र के प्रतिनिधियों की सोच एवं दृष्टि तथा रंगा कर्मियों कलाकारों की विचारों की दृष्टि मे बहुत अन्तर देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची

1. संजीव पाण्डेय, ''अन्न की बर्बादी और भूखी आबादी"
2. विद्यार्थी चटर्जी–"भूमिलूट के दौर में किसान"
3. शाहिद एचौधरी–गाँवों और किसानों की बहाली पर राष्ट्रपति की चिंता जायज'
4. देविन्दर शर्मा, क्या देश को खेती की जरूरत नहीं।
5. धरती नीलाभ, त्रिलोचन, प्रकाशन इलाहाबाद, दूसरा संस्करण पृष्ठ सं०– 75

© RESEARCH STREAM JOURNAL, 2025